International Journal of Applied Research 2019; 5(8): 184-186

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(8): 184-186
www.allresearchjournal.com
Received: 27-06-2019
Accepted: 29-07-2019

डा0 दीपा गुप्ता
प्रवक्ता–प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग कन्या गुरूकुल महाविद्यालय (हरिद्धार) गुरूकुल कॉगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्धार, (उत्तराखण्ड़), भारत

Correspondence
डा0 दीपा गुप्ता
प्रवक्ता–प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग कन्या गुरूकुल महाविद्यालय (हरिद्धार) गुरूकुल कॉगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्धार, (उत्तराखण्ड़), भारत

वैदिक साहित्य में वर्णित कृषि–विज्ञान

डा0 दीपा गुप्ता

प्रस्तावना

वैदिक साहित्य संपूर्ण विश्ववासियों की एक अमूल्य निधि है। यह अत्यधिक विस्तृत एवं व्यवहारिक है। मानव मात्र के कल्याण इसमे अपरिमित शक्ति है। संपूर्ण सृष्टि में जो कुछ श्रेय, प्रेय, हेय, उपादेय आदि है, सब कुछ वेद में ही स्थित है। वेद अत्यन्त रहस्यात्मक है। वेदों के रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए प्राचीन काल से ही न जाने कितने विद्वानों ने प्रयत्न किये। वेद वास्तव में परमात्मा के निःश्वास है। जैसे परमात्मा को अनादि, अनन्त, अखण्ड़ एवं अनिर्वचनीय कहा गया है, इसी प्रकार यह कथन वेदों के लिए भी उतना ही प्रामाणिक है।

''अनन्ता वै वेदाः'' इस श्रुति वाक्य से ही स्पष्ट है कि वेदाराशि अनन्त है। इसे पूर्वकाल में वेदव्यास जी ने प्राणियों की बुद्धि की जड़ता मान्यता का अनुभव करते हुए ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद के रूप में चार भाग किये।

संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद ये सभी वैदिक साहित्य है। वेदांग भी वैदिक साहित्य के ही अन्तर्गत कहे गये है।

वेद ज्ञान विज्ञान के अपार भण्ड़ार है। तथा हमारी भारतीय संस्कृति के आधार है। वेद की महत्ता रसायन ,पर्यावरण, गणित, वनस्पति वास्तुशास्त्र आदि सभी क्षेत्रों में रही है। परन्तु कृषि विज्ञान वेदो में अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्रारम्भ से ही भारतवर्ष अर्थ–व्यवस्था के संदर्भ में कृषि पर ही निर्भर रहा है। कृषि ही भारतीय जन–जीवन का मुख्य आर्थिक व्यवसाय रही है यही कारण रहा है कि संपूर्ण वैदिक साहित्य में कृषि–विज्ञान को मानव जीवन के विकास के प्रथम अध्याय के रूप में लिया गया है। कृषि ही वह तंतु है जिसने असभ्य मानव समाज को सभ्यता एवं संस्कृति के अटूट बंधन में बॉधा। यह कृषि कर्म ही मनुष्य के जीवन की प्रथम कला एवं विज्ञान है क्योकि आर्यों की आस्था के शाश्वत केन्द्र एवं विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद' में कृषि–विज्ञान का विशद वर्णन है। वैदिक ऋषियों ने मनुष्य के लिए कृषि को मुख्य व्यवसाय बतलाया है।

प्राचीन समय के आजीविका के साधनों को, आर्थिक उत्पादन के हेतुओं को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– कृषि, पशुपालन और वाणिज्य। ये कार्य वैश्य वर्ण के लिए निर्धारित थे। [1] उद्योग और व्यवहार (लेन–देन) वाणिज्य के अन्तर्गत गिने गये थे। कृषि, पशुपालन और वाणिज्य की शिक्षा सम्मिलित रूप से वार्त्ता कहलाती थी। प्राचीन भारतीय शिक्षणालयों में यह विषय शिक्षा का अनिवार्य अंग था। वैश्य ही नहीं, अन्य वर्ण भी इसको सीखते थे। विश्वविद्यालयों में शिक्षा के अनेक पीठों मे से, विष्णु पीठ में वार्त्ता की शिक्षा का प्रबंध होता था। [2] जीविका के साधनों में कृषि का महत्व सबसे अधिक रहा। इस कृषि प्रधान देश की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर थी।

आर्यो की संस्कृति मूलतः ग्रामीण थी। अतः कृषि एवं पशुपालन उनकी जीविका के प्रमुख साधन थे। लेकिन प्रारंभ मे आर्यो ने कृषि की अपेक्षा पशुपालन को अधिक महत्व दिया। यही कारण है कि ऋग्वेद में स्थान–स्थान पशुओं की प्राप्ति के लिए देवताओं से कामनायें की गई है। जब कि कृषि से संबधित उल्लेख बहुत कम हैं। लेकिन फिर भी कृषि का उनकी दृष्टि में अत्यन्त महत्व था। 'ऋग्वेद' के एक मंत्र में ''ऋषि कवष ऐलूष'' ने द्यूत–कर्म की निदा करते हुए कहा है– ''पासों का खेल मत खेलो, खेती करो, जो वित्त उससे प्राप्त हो, उसे ही बहुत मानकर भोग करो।'' [3]

वेद कालीन अर्थव्यवस्था में पृथ्वी का अत्यधिक महत्व था। खेती को अपने अर्थिक जीवन का आधार मानने के कारण वैदिक आर्य पृथ्वी को माता की दृष्टि से देखते थे। 'अथर्ववेद' के पृथ्वी सुक्त में कहा गया है– पृथ्वी मेरी माता है, मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ। [4] 'ऋग्वेद' में अनेकों मंत्र पृथ्वी की स्तुति में लिखे गये हैं। 'अथर्ववेद' में वेदकालीन सांस्कृतिक जीवन में पृथ्वी के महत्व को सुन्दर शब्दों में उल्लखित किया गया हैं। अथर्ववेद में उल्लेख मिलता हैं कि इस भूमि पर जो ग्राम है, जो वाहन हैं, तथा जो संग्राम समिति आदि हैं, उनमें हे पृथ्वी, हम तुम्हारी कीर्ति का गान करें। [5]

'ऋग्वेद' में खेतो का क्षेत्र कहा गया हैं। तथा उनके माप का भी वर्णन किया गया हैं। खेत उपजाऊ होते थे, उपजाऊ न होने पर खाद (गाय का गोबर) खेतों मे ड़ाली जाती थी। वर्ष में दो फसलें होती

थी। 'ऋग्वेद' में जोतना (कर्षण) बोना (बपन) काटना (लवण) व मॉड़ना (मर्दन) का वर्णन अर्थात् कृषि कर्म की पूरी प्रकिया का वर्णन मिलता है। [6]

ऋग्वैदिक आर्य हल के प्रयोग से भी परिचित थे। वैदिक साहित्य में हल के लिए 'सीर' 'सील' एवं लॉगन आदि शब्दों का प्रयोग किया गया हैं। [7] हल चलाने वाले को 'कीनाश' कहते थे। [8] हल चलाने से खेतों में जो कतार बन जाती थी, उसे 'सीता' कहते थे। [9] ये हल प्रायः लकड़ी के बने होते थे। [10] जो दो बैलों की सहायता से खींचे जाते थे। [11] यद्यपि ऋग्वेद में कहीं–कहीं पर हलों मे छह से बारह बैलों के जोते जाने का भी उल्लेख मिलता हैं। [12] हल के अग्रभाग को फाल [13] या स्तेग [14] कहा जाता था। जो बहुत ही नुकीला तथा तीक्ष्ण धार वाला होता था। [15] भूमि की जुताई के पश्चात् उसमें बीज बोया जाता था। [16] जमीन की पैदावार बढ़ाने के लिए खेतों में खाद ड़ाली जाती थी। (गाय का गोबर)–खाद! [17]

अनाज पक जाने पर उसको दॉते से काटा जाता था। [18] तत्पश्चात् उसको पुलियों में बॉधकर गाड़ी में लादकर खलियान में लाया जाता था। जहॉ पर अनाज और भूसें को अलग–अलग करने हेतु फसलों की मणनी की जाती थी। मणनी के पश्चात् चलनी की सहायता से अनाज को भूसे से अलग किया जाता था। फिर अनाज को बर्त्तनों से नापा जाता था। नापने वाले बर्त्तन को ''ऊर्दर'' कहा जाता था। [19] इसके पश्चात् उसे धान्यागार में सुरक्षित रखा जाता था।'

ऋग्वेद में 'यव' का उल्लेख मिलता हैं। जिसका अर्थ जौं से लगाया जाता हैं। [20] वेदों में बोये जाने वाले अनाजों के नाम ब्रीहि (धान) यव (जौ) मुद्ग (मूंग) माष (उड़द) गोधूम (गेँहू) नीवार जंगली (धान) प्रियंगु (मैसूर) श्यामाक (सांवा) तिल तथा खीरें का भी उल्लेख मिलता हैं। इसमें अनेक अनाजों के नाम ऋग्वेद में नहीं मिलते, संहिताओं और ब्राह्मण में उपलब्ध होते हैं। फलो की पैदावार के विषय में अधिक ज्ञान नहीं होता, 'बेर' का नाम विशेषतः आता हैं, परन्तु जंगली था या लगाया जाता था, यह कहना कठिन हैं। [22]

साधारणतयाः कृषक सिंचाई हेतू वर्षा पर निर्भर रहते थे। ऋग्वेद के एक मंत्र में जल के दो प्रकार बतलाये गये हैं। खनित्रिमा और स्वयंजा![23]

खनित्रिमा

वह जल होता था, जिसको खोदकर प्राप्त किया जाता था, जैसे –कुएं का जल!

स्वयंजा

नदी, नालों एवं वर्षा के जल को स्वयंजा जल कहा जाता था।

वैदिक आर्य सिंचाई हेतू कुओं, नहरों तथा पोखर आदि साधनों का भी प्रयोग करते थे। कुएं से जल निकालने हेतू चमड़े की रस्सी का प्रयोग करते थे। कुएं से निकाला गया जल बड़ी–बड़ी नालियों द्वारा खेतों तक पहुॅचाया जाता था![24] इसके साथ ही वे फसल को नष्ट करने वाले कीड़ो, टिड्ड़ियों और चिड़ियों से सुरक्षा के उपाय भी करतें थे। [25]

उत्तर वैदिक काल में भी कृषि आर्यों का प्रमुख उधम बन गया था। ''शतपथ ब्राह्मण'' में वर्णित है कि अब जंगलों को जलाकर अधिकाधिक भूमि को कृषि योग्य बनाने के प्रयास किये जा रहे थे। [26] इस समय लौह उपकरणों की सहायता से भी अधिकाधिक भूमि को कृषि योग्य बनाने में सहायता मिली। [27] अतः कृषि योग्य भूमि का विस्तार होने से अधिकांश जनता खेती द्वारा अपना जीवन यापन करने लगी। ''शतपथ ब्राह्मण'' में कृषि से संबंधित चारों क्रियाओं जुताई (कृषतः) बुआई (वपन्तः) कटाई (लुनंत) तथा मड़ाई (मृणन्तः) का उल्लेख मिलता है। [28] जिससे प्रतीत होता है कि इस काल में लोग कृषि को अत्यधिक सुव्यवस्थित और सुचारू ढ़ंग से करने लगे थे। कृषि हल तथा बैंलों की सहायता से की जाती थी। इस काल में ऐसे भारी हल का प्रयोग होने लगा था, जिन्हें छह, आठ या बारह बैल मिलकर खींचते थे। [29] ''काठक संहिता'' चौबीस बैलों वाले हल का उल्लेख करती है। [30] लेकिन एन0 सी0 बांध्योपाध्याय के अनुसार चौबीस बैलों वाले हल का मत उचित प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि आज भी ऐसे हल नहीं बनाये जा सके है–जिसमें छह, बारह तथा चौबीस बैल जोते जा सके। [31]

अनुमानतः एक हल में अधिकाधिक चार बैलों का प्रयोग किया जाता होगा। वास्तव में इतने अधिक बैलों को कृषि संबंधी किसी अनुष्ठान को सम्पन्न करते समय केवल सांकेतिक रूप में जुएं में बॉध दिया जाता होगा। खेत जोतने के लिए नहीं।

ऋग्वेद में तो केवल दो ही अन्नो 'यव' ओर 'धान्य' का उल्लेख मिलता हैं लेकिन इस काल में सभी प्रकार के अनाजों, दालों एवं तिलहन का उत्पादन किया जाने लगा था।

'वाजसनेयी संहिता' के अनुसार– इस काल में चावल (ब्रीहि) जौं (यव) मूंग (मुद्ग) उड़द (भाष) तिल, गेहूँ (गोधुम) सावां (श्यामक) तथा (प्रियंगु) की खेती होती थी। [32] ''अथर्ववेद'' में यव, उड़द, सावां (श्यामक) ईख, तिल का उल्लेख मिलता है। [33]

''बृहदारण्यक उपनिषद'' के अनुसार ग्रामीण इस काल में धान, जौ, तिल, उड़द, सावां, कॉगनी, गेहूँ, मैसूर, कुल्थी इत्यादि अन्न उत्पन्न करते थे। [34] इस काल में भी लोग फसलों को बोतें और काटते थे। वर्ष में दो बार फसल काटी जाती थी। भूमि को अधिकाधिक उपजाऊ बनाने के लिए वे खाद के रूप में गोबर का प्रयोग करते थे। जिसको ''करीष'' भी कहा जाता था।

कृषि को कोई–मकोड़े और टिड्ड़ियों से भय बना रहता था, जिसके निवारण हेतू 'अथर्ववेद' में अनेक मंत्रों का उल्लेख मिलता है। [35] साथ ही कृषि संबंधी आपदाओं जैसे अतिवृष्टि, अनावृष्टि इत्यादि से फसल को बचाने हेतू वे तंत्र–मंत्र का भी प्रयोग करते थे। इस समय कृषकों ने सिंचाई के कृत्रिम साधनों की भी पर्याप्त व्यवस्था कर ली थी। ये लोग प्राकृतिम साधनों जैसे नदी, झील, झरना और वर्षा के अतिरिक्त कुओं, नहरों तथा जलाश्यों जैसे कृत्रिम साधनों का प्रयोग सिंचाई के लिए करते थे। [36]

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक साहित्य में कृषि विज्ञान अत्यन्त विशद रूप में वर्णित है। ऋग्वेद काल में ही नहीं उत्तर वैदिक काल में भी कृषि आर्यों का प्रमुख उद्यम बन गया था। वैदिक काल में सिंचाई के आधुनिक युग की तरह साधान नहीं थे। मुख्यतः खेतों की सिंचाई हेतू वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता था। वैदिक काल में समस्त पुरूष वर्ग खेती का कार्य करता था तथा स्त्रियां घर का काम–काज कर बुनाई आदि का कार्य करती थी। शाम को जब सूर्य अपनी किरण समेट लेता है तो बुनने वाली स्त्रियॉ भी अपना अधूरा बुना हुआ समेट लेती है। [37]

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि संपूर्ण वैदिक साहित्य में वर्णित कृषि–विज्ञान से यही स्पष्ट होता है कि कृषि का कार्य वैदिक आर्यो के लिए अत्यधिक पूजित एवं आदरणीय था, इसका आकलन अथर्ववेद में वर्णित पृथिवी सुक्त से किया जा सकता हैं। इस सुक्त में मातृ स्वरूपा पृथ्वी को ही समग्र पार्थिव पदार्थों की जननी तथा पोषिका कहा गया हैं।

संदर्भ

1. भगवद्गीता 18,44; मनुस्मृति, 1,90
2. The age of imperial unity, vidya, bhavan, page-589
3. ऋग्वेद, 10,33,13,
4. अथर्ववेद, 12,1,12,
5. अथर्ववेद, 12,1,56
6. शतपथ ब्राह्मण, ऋग्वेद, 10,10,3 / 10,48,7
7. ऋग्वेद, 4,58,8 / 10,101,3–4 / 57 / 4 अथर्ववेद– 3,17,3
8. वही– 4,57,8,
9. वही– 4,57,6–7

10. रामगोपाल, इण्ड़िया ऑफ दि वैदिक कल्प सूत्राज, पृष्ठ संख्या– 133–134
11. ऋग्वेद– 10,106,2,
12. वही– 6,91,1,
13. वही– 10,117,7 कृषिन्नित, फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृंकते चरित्रैः!
14. वही– 10,13,9 ''स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वी''।
15. अच्छे लाल यादव, प्राचीन भारत में कृषि, पृष्ठ संख्या– 34–35
16. ऋग्वेद, 10,62,8
17. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, वेद में कृषि विद्या, पृष्ठ संख्या 19–20
18. ऋग्वेद– 8,78,10 / 10,101,3
19. ऋग्वेद– 2,14,11 ''तमूर्दर न पृषता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्त दपो वो अस्तु''!
20. ऋग्वेद– 2,14,11.
21. वाजसेनिय संहिता– 18,12.
22. आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ– 452
23. ऋग्वेद– 7,49,2.
24. ऋग्वेद– 11,25,4.
25. ऋग्वेद– 10,68,1
26. शतपथ ब्राह्मण – 1,4,1,10.
27. आर0 एस0 शर्मा, भारतीय सामन्तवाद– पृष्ठ संख्या– 137
28. शतपथ ब्राह्मण– 1,6,2,3 ''कृषन्तो ह स्मेव पूर्वे, वपन्तों। यन्ति लुनन्तों, अपरे मृणन्तः''।
29. अथर्ववेद– 6,91, 1/8,9,16, तैत्तिरीय संहिता, 1,8,7,1/52 मैत्रायणी संहिता– 2,6,2.
30. काठक संहिता 15,2.
31. एन0सी0 बांध्योपाध्याय, इकोनिमिक लाइफ एन्ड़ प्रोग्रेस इन ऐंश्येंट इंड़िया, पृष्ठ संख्या–128–129
32. वाजसनेयी संहिता– 18,12/19,22/21,29.
33. अथर्ववेद– 12,2,54/18,3,6–9
34. वृहदारण्यक उपनिषद– 6,31.
35. अथर्ववेद– 6,50,52.
36. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, वेद में कृषि विद्या, पृष्ठ संख्या–18
37. ऋग्वेद 2.38.4.